यावत् जीवेत् सुखं जीवेत्

ISSN : 2348-0114
Impact Factor : 2.632
मूल्य : ₹ 500

वर्ष : 3
अंक : 12
(अगस्त 2016–अक्तूबर 2016)
www.chintanresearchjournal.com

मुख्य–संपादक
आचार्य (डॉ.) शीलक राम

हिन्दू

(International Refereed)

कला, साहित्य, मानविकी, समाज–विज्ञान, वाणिज्य, प्रबंधन, विधि एवं विज्ञान विषयों का **अंतर्राष्ट्रीय मूल्यांकित त्रैमासिक रिसर्च जर्नल**

(आचार्य अकादमी, भारत)
ISO : 9001:2008

Scanned with CamScanner

(International Refereed)
Impact Factor 2.632

हिन्दू अंतरराष्ट्रीय त्रैमासिक शोध-पत्रिका

वर्ष:3, अंक:12 (अगस्त-अक्तूबर, 2016) (पृ.सं. 50-56) (ISSN 2348 - 0114)

योगदर्शन का उद्भव, विकास एवं महर्षि पतंजलि

डॉ. मूलचन्द
प्रवक्ता-संस्कृत
राजकीय लोहिया महाविद्यालय
चूरू (राजस्थान)

शोध-आलेख सार

'दर्शन' की यह परम्परा धीरे-धीरे अनेक भागों में विभक्त हो गई। कम से कम 1000 वर्ष ई.पू. ही भारतीय दर्शन के चिन्तन हेतु 'षड्दर्शन' विभाग बन चुके थे। 'षड्दर्शन' आस्तिक-दर्शनों की चिन्तन-भूमि है। इसमें 1. पूर्व-मीमांसा, 2. वेदान्त, 3. सांख्य, 4. योग, 5. न्याय और 6. वैशेषिक सम्मिलित हैं। इनके अतिरिक्त चार्वाक-दर्शन, बौद्ध-दर्शन तथा जैन-दर्शन भी वेद की प्रमाणता की दृष्टि से नास्तिक-दर्शनों के रूप में ई.पू. ही विख्यात हो गए। 'योगदर्शन' की उत्पत्ति वैदिक काल से ही मानी जाती है। वेद के अन्तः साक्ष्यों से यह सिद्ध होता है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद में अनेक स्थलों का 'योग' का उल्लेख मिलता है। यह 'योग' शब्द सर्वत्र नहीं तो कुछ स्थलों पर तो 'योगसाधना' का अर्थ समेटे हुए है ही।

मुख्य-शब्द : योगसाधना, सांख्ययोग, दर्शन, योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः, काल्पनिकता एवं क्षणसत्ता

'दर्शन' शब्द का व्युत्पति-लभ्य अर्थ है - दृश्यते ज्ञायते विचार्यते अनेनेति। अर्थात् जिस साधन से चर्मचक्षुओं के अविषयभूत - ईश्वर, जीव, प्रकृति, परलोक, पुनर्जन्म, मोक्ष आदि अलौकिक विषयों का बोध होता है, वह **'दर्शन'** है। यह शब्द **'दृशिर् प्रेक्षणे'** धातु से 'ल्युट्' प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है। वस्तुतः यह अन्वर्थक पद है। किन्तु इसका क्षेत्र अत्यन्त विस्तीर्ण है। अत्यन्त प्राचीन काल से ऋषियों, महर्षियों ने इस साधन से अध्यात्म की अतल गहराइयों में प्रवेश किया। उनकी साक्षात् अनुभूतियों को वेदों से लेकर आधुनिक ग्रन्थों तक मीमांसा की कसौटी पर कसा जा रहा है। फिर भी आत्मा, ब्रह्म, जीव, मोक्षादि विषय आज भी उतने ही रहस्यमय है, जितने आदि-चिन्तन में थे।

'दर्शन' की यह परम्परा धीरे-धीरे अनेक भागों में विभक्त हो गई। कम से कम 1000 वर्ष ई.पू. ही भारतीय दर्शन के चिन्तन हेतु 'षड्दर्शन' विभाग बन चुके थे। 'षड्दर्शन' आस्तिक-दर्शनों की चिन्तन-भूमि है। इसमें 1. पूर्व-मीमांसा, 2. वेदान्त, 3. सांख्य, 4. योग, 5. न्याय और 6. वैशेषिक सम्मिलित है। इनके अतिरिक्त चार्वाक-दर्शन, बौद्ध-दर्शन तथा जैन-दर्शन भी वेद की प्रमाणता की दृष्टि से नास्तिक-दर्शनों के रूप में ई.पू. ही विख्यात हो गए।

'योगदर्शन' की उत्पत्ति वैदिक काल से ही मानी जाती है। वेद के अन्तः साक्ष्यों से यह सिद्ध होता है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद में अनेक स्थलों का **'योग'** का उल्लेख मिलता है। यह **'योग'**

Scanned with CamScanner

शब्द सर्वत्र नहीं तो कुछ स्थलों पर तो **'योगसाधना'** का अर्थ समेटे हुए है ही। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के 18वें सूक्त का सप्तम मन्त्र द्रष्टव्य है -

यस्मादृते न सिध्यति यज्ञो विपश्चितश्चन।
स धीनां योगमिन्वति।।

अर्थात् जिन - इन्द्रादि देवता के बिना प्रकाशमय ज्ञानी का जीवन-यज्ञ भी सफल नहीं होता, उसी में ज्ञानियों को अपनी बुद्धि का योग करना चाहिए।

स घा नो योग आभुवत् स राये स पुरंध्याम्।
गमद् वाजेभिरा स नः।। ऋ. 1/5/3

''वह इन्द्र प्राप्त होने योग्य धन को हमें प्राप्त करावे तथा सुमति दे। वह अपनी विभिन्न शक्तियों सहित हमको प्राप्त हो तथा इनसे सम्बन्ध रखने वाले उस साधक को न तो रोग होता है, न बुढ़ापा आता है और न उसकी मृत्यु ही होती है।''

न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः।
प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम्।। 2.12।।

इस प्रकार उपनिषद् - ग्रन्थों में **'योग'** के अनेक उद्धरण प्राप्त होते है। वेदों की अपेक्षा यहां 'योग' स्पष्टतर विवेचित हुआ है।

वेदों और उपनिषदों के अनन्तर योग-विषयक मन्तव्यों का उल्लेख अपेक्षाकृत कम हुआ है। किसी विशेष ग्रन्थ की प्राप्ति और योग की कुछ नवीन उपलब्धियों का संकेत मिलता है। तदनन्तर बौद्ध-धर्म और जैन-धर्म के प्रबल प्रवाह में **'योग'** का चिन्तन मन्दतर हो गया।

'गीता' में सांख्ययोग पर व्यापक चिन्तन हुआ है। यह गहन मीमांसा महर्षि पतंजलि के लिए स्वग्रन्थ-रचना हेतु एक आधार बना। गीता में प्रत्येक अध्याय के विभिन्न पक्षों पर समुचित विमर्श हुआ है। योग की परिभाषा करते हुए 'गीता' कहती है -

योगस्थः कुरु कर्माणि संगं त्यक्त्वा धनंजय।
सिद्धयसिद्धयोः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।। 2.48।।
श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला।
समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि ।। 2.53।।
तं विद्याद्दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम्।
स निश्यचेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा।। 6.23।।

वास्तव में समाधि-पर्यन्त अष्टांगों में प्रवीणता प्राप्त कर मन की वृत्तियों को रोकना ही योग है -

योगः कर्मसु कौशलम्।। 2.50।।
समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि।। 2.53।।

अन्ततः कहा जा सकता है कि गीता में 'योग' का वैविध्यपूर्ण नवीन चिन्तन हुआ है, जो पतंजलि के लिए **'योगसूत्र'** - रचना में बहुत सहायक रहा।

महर्षि पतंजलि **'योगसूत्र'** की रचना का समय ई.पू. द्वितीय शताब्दी माना जाता है। अनेक पुष्ट प्रमाणों के द्वारा विद्वानों ने प्रायः **'महाभाष्यकार पतंजलि'** को ही **'योगसूत्र'** का रचियता माना है। पतंजलि की स्थिति शुंगवंशीय राजा **'पुष्यमित्र'** के आस-पास मानी जाती है।

युक्तेन मनसा वयं देवस्य सवितुः सवे।
स्वर्ग्याय शक्त्या।। यजु. 11/2

हम सर्वोत्पादक परमात्मा की आराधनारूप यज्ञ में लगे हुए मन (योग) योग द्वारा परमानन्द की प्राप्ति के लिए पूर्ण शक्ति से प्रयन्त करें।

Scanned with CamScanner

इन समस्त मन्त्रों में **'योग'** शब्द निश्चय ही **'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः'** योगसूत्र के अर्थ के ही धारण किए हुए है।

उपनिषदों में भी **'योग'** की महत्ता स्वीकार की गई है। योग के बिना वेदान्त-दर्शन अधूरा है। **'अहं ब्रह्माऽस्मि'** की अवस्था भी योगपूर्वक ही सम्भव है। इसलिए कठोपनिषद् कहता है-

अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति।। 1.2.21।।

अर्थात्- ''इन्द्रिय, मन और बुद्धि की स्थिर धारणा का ही नाम 'योग' है - ऐसा अनुभवी योगी महानुभाव मानते है।''

बृहदारण्यकोपनिषद् कहता है - **''तस्मादेवं विच्छान्तो दान्त उपरतस्तितिक्षुः समाहितो भूत्वा आत्मन्येवात्मानं पश्चति।। 4.4.23।।''** और उससे इस प्रकार शान्त, दान्त, उपरत, तितिक्षु एवं समाहित चित्त वाला होकर योगी स्वयं में आत्मा का दर्शन करता है।

मैत्रायणी उपनिषद् के अनुसार तो बिना समाधि (योग) के आत्मानन्द की प्राप्ति भी सम्भव नही है। क्योंकि समाधि से ही चित्त की निर्मलता प्राप्त होती है-

''समाधिनिर्धूतमलस्य चेतसो निवेशितस्यात्मनि यत्सुखं लभेत ।। 2.13।।''

श्वेताश्वतरोपनिषद् में योग की सुन्दर व्याख्यात की गई है। उपनिषद् कहात है-

लघुत्वमारोग्यमलोलुपत्वं, वर्णप्रसादं स्वरसोष्ठवं च।
गन्धः शुभो मूत्रपुरीषमल्पं, योगप्रवृत्तिं प्रथमां वदन्ति।। 2.13।।

''शरीर का हल्कापन, आरोग्य, विषयासक्ति की निवृत्ति, शारीरिक वर्ण की उज्ज्वलता, स्वर की मधुरता, शरीर में अच्छी गन्ध और मल-मूत्र कम हो जाना - इसमें योग की पहली सिद्धि कहते है।''

इसी उपनिषद् में उपर्युक्त मन्त्र से पूर्ववर्ती मन्त्र द्वारा कहा गया है कि पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकश - इन पांचों महाभूतों का सम्यक् प्रकार से उत्थान सिद्धि होने पर है। **'पातंजल योगसूत्र'** क्रमशः- समाधिपाद, साधनपाद, विभूतिपाद और कैवल्यपादों में विभक्त है। यह **'योग'** का प्रतिष्ठापक ग्रन्थ है। इसमें योग, क्लेश, उपाय, ईश्वर आदि विषयों पर मौलिक चिन्तन के साथ अनेक सूत्र लिखे गए है, जिनका आगे विस्तार से वर्णन किया जाएगा। यह ग्रन्थ **'योगदर्शन'** की विवेचना में पूर्णतः वैज्ञानिक-ढंग से आगे बढ़ता है तथा आगे के लेखकों हेतु उपजीव्य है।

पातंजल योग-सूत्रों पर आगे बहुत गम्भीर चिन्तन हुआ। इसमें 'व्यास' नामक योगी का बहुत बड़ा योगदान है। आपने **'व्यासभाष्य'** लिखकर **'योगसूत्रों'** की दुरूहता, रहस्यमयता एवं अस्पष्टता को क्रमशः सरलता, प्रकटता एवं स्पष्टता में परिवर्तित कर दिया। अत्यन्त सहज एवं मौलिक विचारों के साथ लिखा गया **'व्यासभाष्य'** परवर्ती योगियों - लेखकों के लिए विश्व कोष सिद्ध हुआ। इनकी नई-नई उद्भावनाएँ **'योग'** के लिए वरदान सिद्ध हुई। यही कारण था कि आगे चलकर अनेक चिन्तकों ने इस ग्रन्थ को आधार बनाकर **'योगसूत्र'** पर अन्य भाष्य भी लिखे। इनमें प्रथम टीका है - **'तत्त्ववैशारदी'**। वाचस्पति मिश्र द्वारा लिखित यह टीका वस्तुतः 'व्यासभाष्य' पर ही लिखी गई है। **'मिथला'** प्रान्त के निवासी श्री वाचस्पति मिश्र वहां के किसी **'नृग'** नामक विख्यात नृपति के आश्रित विद्वान थे। अपनी टीका में वे लिखते है - **''तस्मिन् महीये महनीयकीर्तौ श्रीमन्नृगेऽकारि मया निबन्धः।''** इनका समय विक्रमाब्द 898 तदनुसार 841 ई. सन् है। यह उनके द्वारा लिखित इस श्लोक से सिद्ध होता है-

न्यायसूची निबन्धोऽसावकारि सुधियां मुदे।
श्रीवाचस्पतिमिश्रेण वस्वंकवसुवत्सरे।। (न्यायसूत्रनिबन्ध)

वाचस्पति मिश्र बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। समस्त दर्शनों पर उनकी लिखी टीकाएँ इसका प्रमाण है। **'तत्त्ववैशारदी'** व्यासभाष्य की दुरूहता का विनाश कर उसे सर्वसाधारण हेतु सरलता व सहजता से प्रस्तुत

Scanned with CamScanner

करती है। भाषा का लालित्य व भावों की प्रांजलता का अपूर्व मिश्रण हुआ है। अतः यह **'योग'** हेतु एक असामान्य टीका कही जा सकती है।

'तत्ववैशारदी' टीका के बाद **'योगसूत्र'** पर परमारवंशीय महाराजा भोज की **'राजमार्त्तण्डवृत्ति'** प्राप्त होती है। इस वृत्ति का विद्वत्समाज में बहुत आदर है। महाराज भोज द्वारा योगसूत्रों पर बहुत सारगर्भित एवं मध्यम विस्तार वाली वृत्त अनेक दुरूह स्थलों को स्पष्ट करने वाली है। दुरूहता से पलायन करने का सिद्धान्त नही है। अतः हर विषमस्थल पर आपने विशेष कथन से उसे स्पष्ट किया है। फिर भी कुछ स्थलों पर 'वाचस्पति' से मतभेद भी दिखाई देता है।

'राजमार्त्तण्डवृत्ति' तो योगसूत्रों पर है; किन्तु 16वी शताब्दी में स्थित आचार्य विज्ञानभिक्षु ने तो 'व्यासभाष्य' पर 'वार्तिक' लिखकर एक नया इतिहास रच डाला। योग की परम्परा में 'वार्तिक' रचने का यह प्रथम प्रयास था, जो पूर्णतः सफल सिद्ध हुआ। विज्ञानभिक्षु की इस रचना को 'योगवार्तिक' के नाम से जाना जाता है। 'योगवार्तिक' विशालकाय व्याख्या है। यद्यपि वाचस्पति मिश्र के साथ योग के मौलिक स्वरूप, जैसे कई मन्तव्यों में इनका मतभेद दृष्टिगोचर होता है। किन्तु योग की अतल गहराईयों में प्रवेशार्थ तथा सांख्य एवं योग के प्रति एकबुद्धयुपारूढ़ता के लिए 'योगवार्तिक' अद्वितीय है। यहां विज्ञानभिक्षु सांख्ययोग के प्रति पक्षपाती होते-से दिखते है, किन्तु योग-दर्शन हेतु यह उपादेय है। अतः इस ग्रन्थ की महिमा किसी भी अवस्था में न्यूनता को प्राप्त नही होती है। यह योगसूत्रों को सही स्वरूप में समझने के लिए महत्वपूर्ण है।

इन टीकाओं के अतिरिक्त नागेशभट्ट की 'योगसूत्रवृत्ति' भावागणेश की ***'सूत्रवृत्ति;*** अनन्त की (क) योगसूत्रार्थचन्द्रिका, (ख) योगचन्द्रिका, (ग) पदचन्द्रिका; उदयशंकर की ***'योगसूत्रवृत्ति'***; सदाशिवेन्द्र सरस्वती को ***'योगसुधाकर'***; पं. आनन्द की 'योगचन्द्रिका'; नारायणतीर्थ की ***'योगसिद्धान्तचन्द्रिका'*** क्षेमानन्द दीक्षित की ***'न्यायरत्नाकर'***; सदाशिव की ***'योगसूत्रवृत्ति'***; ज्ञानानन्द की 'नवयोगकल्लोल'; वृन्दावन शुक्ल की ***'योगसूत्रवृत्ति'***; उदयशंकर की ***'योगवृत्तिसंग्रह'***; उमापति मिश्र की ***'योगवृत्तिसंग्रह'***; महादेव की ***'योगसूत्रवृत्ति'***; भवदेव की (क) पातंजलीयाभिनवभाष्य, (ख) ***'योगसूत्रवृत्तिटिप्पण'***; राधानन्द की ***'पातंजलरहस्यप्रकाश'***; स्वामी हरिहरानन्द आरण्यक की ***'भास्वती'*** स्वामी राघवानन्द यति व श्रीधरानन्द यति की एक ही नाम वाली ***'पातंजलरहस्य'***; रामानन्द सरस्वती (रामनन्द तीर्थ) की ***'योगमणिप्रभा'***; स्वामी रामानुज की ***'योगसूत्रवैदिकवृत्ति'*** टीकाएँ सुप्रसिद्ध है।

योग के उद्भव से सतत प्रवहणशील इस चिन्तन की धारा अभी थमी नहीं है। अभी भी 'योग' पर योगियों की साधना एवं लेखकों का चिन्तन प्रवाहित है।

महर्षि पतंजलि का जीवनवृत्त

महर्षि पतंजलि 'योगदर्शन' के अनुशासक माने जाते है। क्योंकि 'पातंजल योगदर्शन' योगदर्शन के उपलब्ध ग्रन्थों में सर्वाधिक प्राचीन है। पश्चाद्वर्ती समस्त भाष्य, टीकाएँ, व्याख्याएँ तथा अन्य योगग्रन्थों का मूलाधार ***'पातंजल योगदर्शन'*** ही रहा है, अतः इस कथन की सत्यता में लव-लेश भी शंका नही होनी चाहिए। यत्र-तत्र महर्षि पतंजलि को ***'योगदर्शन'*** के अनुशासक के रूप में स्वीकार भी किया गया है। पातंजल योगसूत्रों में प्रथम - ***'अथ योगानुशासनम्'*** से यह स्पष्ट ज्ञात होता है। तत्त्वैशारदी टीका में इसकी व्याख्या इसको पूर्णतया स्पष्ट करती हुई कहती है- ***"सूत्रकारेणोक्तम् - अनुशासनम् इति शिष्टस्य शासनमनुशासनमित्यर्थः।"***

अत्यन्त विशृंखलित एवं बीजभूत योगतत्त्वों को शृंखलाबद्ध एवं सुपल्लवित कर स्वतन्त्र दर्शन के रूप में स्थापित करने वाले महर्षि पतंजलि का जीवनवृत्त अधुनातन अस्पष्ट-सा बना हुआ है। भारतीय परम्परा जहां ई.पू. 200 में अवतरित महाभाष्यप्रणेता महर्षि पतंजलि को ही **'योगसूत्रों'** का भी रचियता मानती है, वही कुछ वैदेशिक विद्वान् व उनके अनुकर्ता भारतीय मनीषी भी उन्हें महाभाष्यकार पतंजलि से सर्वथा भिन्न स्थापित

Scanned with CamScanner

करते है। ऐसी विषम स्थिति में यथार्थ हेतु सुचिन्तन की आवश्यकता प्रतीत होती है। अतः संक्षेप में विभिन्न मतावलम्बियों के महर्षि पतंजलि के कालविषयक मन्तव्यों पर सारगर्भित दृष्टिपात किया जाना अपेक्षित है।

महर्षि पतंजलि (योगसूत्रकर्ता) का काल व जीवनवृत्त दो विचारधाराओं में जाना जा सकता है-

1. महाभाष्यकार पतंजलि व योगसूत्रकार पतंजलि - दो भिन्न व्यक्ति है।
2. महाभाष्यकार पतंजलि ही योगसूत्रकार महर्षि पतंजलि है।

1. महाभाष्यकार तपंजलि व योगसूत्रकार महर्षि पतंजलि - दोनों भिन्न व्यक्ति है पाश्चात्य व पौरस्त्य विद्वानों में केचित् मनीषि महाभाष्यकार महर्षि पतंजलि व योगसूत्रकार महर्षि पतंजलि को भिन्न-भिन्न मानते है। इनमें जे. एम. वुड्स, एन. पेरी, एव. विण्टरनिट्ज, प्रो. गाइगर श्चोखात्सकी, प्रो. जेकोबी, प्रो. कीथ आदि प्रमुख है।

2. जे. एम. वुड्स के अनुसार योगसूत्रकार पतंजलि महाभाष्यकार पतंजलि से सर्वथा भिन्न थे। वुड्स के अनुसार योगसूत्रकार पतंजलि बौद्ध दार्शनिक वसुबन्धु के पाश्चातद्वर्ती थे। वसुबन्ध का समय चौथी शताब्दी माना जाता है। जे. एम. वुड्स कहते है कि इनकी भिन्नता का प्रथम कारण है- दोनों द्वारा *'द्रव्य'* का भिन्न-भिन्न लक्षण करना। इनके अनुसार योगसूत्रकार ने तृतीय व चतुर्थ पादों में विज्ञानवाद का खण्डन किया है। बौद्ध विज्ञानवाद के प्रवर्तक वसुबन्धु है, अतः वसुबन्धु से इनका परवर्ती होना ही समीचीन है। वाचस्पति मिश्र ने भी व्यासभाष्य पर अपनी तत्त्ववैशारदी व्याख्या में पतंजलिकृत खण्डन को विज्ञानवादियों का ही खण्डन माना है - *''अथ विज्ञानवादिनं वैनाशिकम् उत्थापयति।''* इनके अतिरिक्त बसुबन्धु, नागार्जुन आदि ने कही भी योगसूत्रकार पतंजलि का उल्लेख नहीं किया है। अतः योगसूत्रकार पतंजलि महाभाष्यकार पतंजलि से भिन्न एवं परवर्ती है।

जैन आचार्य उमास्वामी (पंचमशताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुए है) ने स्वविरचित 'तत्त्वार्थाधिगमसूत्र' में 'योगसूत्र' का उल्लेख किया है। अतः इनसे पूर्व अर्थात पंचम शताब्दी से पहले पतंजलि की स्थिति थी। महाकवि माघ ने *'शिशुपालवधम्'* में *'मैत्रीकरूणा-मुदतोपेक्षाणां...'* इत्यादि सूत्र (1/33) का उल्लेख किया है। अतः इनसे पूर्व ही योगसूत्रकारकाल माना जा सकता है। इस प्रकार वुड्स ने कुछ अन्य उद्धरणों से योगसूत्रकार महर्षि पतंजलि का समय चौथी शताब्दी के आस-पास माना है।

प्रो. जेकाबी तथा प्रो. कीथ ने भी महाभाष्यकाल पतंजलि से योगसूत्रकार पतंजलि को अलग माना है। प्रो. जेकाबी कहते है कि योगसूत्रकार पतंजलि *'शब्दार्थ प्रत्यायानामितरेतराध्यासात्....'* इत्यादि सूत्र (3/17) में *'स्फोट-सिद्धान्त'* का वर्णन करते है, कि महाभाष्यकार पतंजलि का सिद्धान्त है। अतः योगसूत्रकार पतंजलि महाभाष्यकार से परवर्ती सिद्ध होते है।

वैशेषिकों के अन्तःकरण-विभुत्व तथा परमाणुत्व सिद्धान्त को योगसूत्रकार ने स्वीकार किया है, जो योगसूत्रकार को वैशेषिकों से पश्चाद्वर्ती सिद्ध करता है। योगसूत्रकार पर सौन्तिकों के काल की सत्ता की काल्पनिकता एवं क्षणसत्ता की यथार्थता का भी प्रभाव है। अतः वे इनसे परवर्ती सिद्ध होते है।

प्रो. वेबर बृहदारण्यकोपनिषद् के *'काप्यपातंजल...'* उद्धरण से योगसूत्रकार पतंजलि को उपनिषदों से भी पूर्ववर्ती स्वीकारते है। महाभाष्यकार पतंजलि को इनसे भिन्न सिद्ध करते है। पं. उदयवीर शास्त्री भी भाष्यकार से योगसूत्रकार को भिन्न ठहराते है। आप योगसूत्रकार पतंजलि को महाभाष्यकार से प्राचीन मानते है।

3. महाभाष्यकार पतंजलि ही योगसूत्रकार महर्षि पतंजलि है - इस मत के प्रतिपादकों में डॉ. एस. एन. दास गुप्त, पं. ज्वालाप्रसाद, रिचर्ड गार्बे, बी. लाइबिश, मरकिया एलियड आदि प्रमुख विद्वान है। ये सभी विद्वज्जन ई.पू. द्वितीय शताब्दी को योगसूत्रकार का काल मानते है तथा महाभाष्यकार पतंजलि से योगसूत्रकार को अभिन्न प्रतिपादित करते है। इनके कुछ प्रमुख तर्क है-

Scanned with CamScanner

(i) डॉ. एस. एन. दासगुप्त कहते है कि योगसूत्र का *'कैवल्यपाद'* मूलग्रन्थ का अंश नही है। अपितु प्रक्षिप्त भाग है। क्योंकि *'विभूतिपाद'* में ही प्रतिपाद्य प्रतिपादित हो जाता है। अतः योगसूत्रों में विज्ञानवाद बौद्धों के मत के खण्डन का मत ही खण्डित हो जाता है।

(ii) *'कैवल्यपाद'* को योगसूत्र का भाग मान भी लिया जाए, फिर भी विज्ञानवादियों के मत के खण्डन की बात असत्य सिद्ध होती है। क्योंकि जहां विज्ञानवाद का खण्डन किया गया है, वह 'योगसूत्र' का सूत्र नही अपितु *'व्यासभाष्य'* का एक पाद है। पं. जवालाप्रसाद भी इससे सहमत है। वे लिखते है - *''न चैकचित्ततन्त्रं वस्तु तदप्रमाणकं तदा किं स्यात्'* - यह योगसूत्र नही है। इलियड जैसे अन्य विद्वान भी यह तर्क देते है कि माना यह *'योगसूत्र'* का एक सूत्र है तथा यह आदर्शात्मक विचारों का खण्डन भी करता है, किन्तु यह कैसे कहा जाए कि यह विज्ञानवादी बौद्धों का ही खण्डन है? ऐतरेय आरण्यक जैसे प्राचीन ग्रन्थों में भी इस प्रकार के विचारों का खण्डन पाया जाता है। ऐतरेय आरण्यक तो भगवान बुद्ध से भी पूर्व की रचना है; विज्ञानवादी बौद्धों का तो कहना भी क्या? अतः आधारहीन तर्कों से महाभाष्यकार पतंजलि तथा योगसूत्रकार पतंजलि को भिन्न सिद्ध करना मात्र दुराग्रह है।

(ii) नागार्जुन ने यदि अपने ग्रन्थ में पतंजलि का उल्लेख नही किया तो भी क्या? उन्होंने *'योग'* को *'उपायकौशल्यहृदयशास्त्र'* द्वारा दार्शनिक मत के रूप में स्वीकार तो किया ही है। अतः सम्भव है कि यह 'योग' पातंजल योगदर्शन का ही हो।

(iv) *दिङ्.नाग'* एक तार्किक आचार्य थे, जबकि योगसूत्रकार पतंजलि एक 'योगी'। पतंजलि उनके मत के खण्डन-मण्डन से सर्वथा परे थे। अतः *दिङ्.नाग'* के वे न तो आदर्श थे और न ही विरोधी। फिर भला दिङ्.नाग उनका उल्लेख क्यों करते? अतः पतंजलि को इस आधार पर दिङ्.नाग से परवर्ती करना असंगत है।

(v) *'स्फोट-सिद्धान्त'* का यदि पतंजलि ने योगसूत्र में संकेत किया है तो उससे वे महाभाष्यकार से पृथक् सिद्ध कैसे किया जा सकते है। अपितु महाभाष्यकार का *'एवं तर्हि स्फोटः शब्द....'* इत्यादि स्फोटवाद उनसे अभिन्नता ही प्रतिपादित करता है।

इसी प्रकार *'अन्तःकरण का विभुत्व'* तथा *'परमाणुवाद'* जैसे तर्कों का भी डॉ. एस. एन. दास गुप्त आदि ने प्रबल खण्डन करते हुए महाभाष्यकार पतंजलि एवं योगसूत्रकार पतंजलि को एक ही प्रतिपादित किया है।

वस्तुतः 'भोजराज', भर्तृहरि, चक्रपाणिदत्त, नागेश आदि ने पतंजलि (महाभाष्यकार) को ही योगसूत्रकार माना है। 'राजमार्त्तुण्डवृत्ति' में भोजराज कहते है-

''शब्दानामनुशासनं विदधत, पातंजले कुर्वाता..... (मंगलाचरण-5)

जैसे सर्पराज शेषावतरा पतंजलि ने महाभाष्य, योगसूत्र.... की रचना करते हुए....। यहां पतंजलि (महाभाष्यकार व योगसूत्रकार) एक ही है, ऐसा स्पष्ट उद्घोष है।

'चरकसंहिता' के टीकाकार चक्रपाणित्त पतंजलि को महाभाष्य, चरकसंहिता तथा योगसूत्र का रचनाकार मानते हुए नमस्कार करते हुए कह रहे है-

पातंजलमहाभाष्यचरकप्रतिसंस्कृतैः।
मनोवाक्कायदोषाणां हन्त्रेऽहितपये नमः।।

'वैयाकरणलघुमंजूषा' के रचयिता वैयाकरण नागेश भट्ट ने भी चरकसंहिता, महाभाष्य का रचनाकार मानते हुए रचयिता एक पतंजलि को ही माना है।

'पतजंलिचरित' में रामभद्र दीक्षित ने भी ऐसा ही मानते हुए लिखा है -

योगेन चित्तस्य पदेन वाचां मनं शरीरस्य व वैद्यकेन।
योऽपाकरोत्तं प्रवरं मुनीनां पतंजलि प्रांजलियनतोऽस्मि।।

Scanned with CamScanner

इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि महाभाष्यकार पतंजलि ही योगसूत्रकार पतंजलि है। इनकी स्थिति शुंगवंशीय राजा 'पुष्यमित्र' के शासन में ठहरती है। *'पुष्यमित्र'* का समय ई.पू. द्वितीय शताब्दी माना जाता है। महाभाष्य में पतंजलि ने पुष्यमित्र से सम्बद्ध अनेक वाक्य लिखे है-

पुष्यमित्रं राजामहे। पुष्यमित्रं याजयामः।

चन्द्रगुप्तसभा। पुष्यमित्रसभा। आदि।

महर्षि पतंजलि का निवास स्थान 'कश्मीर' प्रतीत होता है। क्योंकि महाभाष्य में यत्र-तत्र 'कश्मीर' पद का प्रयोग करते हुए अनेक वाक्य लिखे गये है। जैसे - *'कश्मीरान् गमिष्यामो देवदत्त ! तत्र सक्तून् पास्यामः।' 'समेताः पुण्यकर्मणि पार्श्वे हिमवतः शुभे।' वने चैत्ररथे रम्ये।'*

कुछ विद्वान पतंजलि को गोनर्दीय (गोण्डा का निवासी) मानते है। किन्तु पतंजलि गोनर्दीय नही थे, अपितु महर्षि कात्यायन ही गोनर्दीय थे। ऐसा पं. हरिदीक्षित, सुब्रह्मण्यम शास्त्री, पं. दामोदर प्रसाद शर्मा, शास्त्री वैद्य आदि विद्वान मानते है। इनका कहना है कि महर्षि पतंजलि कश्मीर की 'नागू' ब्राह्मण जाति के मुखिया थे। अतः *'नागराज'* जैसे नामकरण हुए हों।

संदर्भ

1.	ऋग्वेद	-	अज्ञात
2.	यजुर्वेद	-	अज्ञात
3.	अथर्ववेद	-	अज्ञात
4.	कठोपनिषद्	-	अज्ञात
5.	बृहदारण्यकोपनिषद्	-	अज्ञात
6.	मैत्रायणी उपनिषद्	-	अज्ञात
7.	श्वेताश्वतरोपनिषद्	-	अज्ञात
8.	गीता	-	महर्षि व्यास
9.	महाभाष्य	-	महर्षि पतंजलि
10.	व्यासभाष्य	-	व्यास मुनि
11.	तत्त्ववैशारदी	-	वाचस्पति मिश्र
12.	राजमार्त्तण्डवृत्ति	-	भोज
13.	योगवार्त्तिक	-	विज्ञानभिक्षु
14.	तत्त्वार्थाधिगमसूत्र	-	उमा भारती
15.	शिशुपालवध	-	माघ
16.	चरकसंहिताटीका	-	चक्रपाणिदत्त
17.	वैयाकरणलघुमंजूषा	-	नागेश भट्ट
18.	पतंजलिचरित	-	रामभद्र दीक्षित

Scanned with CamScanner